

७५ गाथा के ऊपर एक कलश बाकी है। उपाध्याय कैसे होते हैं, उनकी व्याख्या हो गयी। अब उसका कलश है।

रत्नत्रयमयान् शुद्धान् भव्याम्भोजदिवाकरान्।

उपदेष्टुनुपाध्यायान् नित्यं वन्दे पुनः पुनः॥१०५॥

रत्नत्रयमय,... जैन के उपाध्याय उन्हें कहते हैं, जिन्हें सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, तीन रत्नोमय जिनकी अभेद परिणति हुई है। शुद्ध आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप का आश्रय लेकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय उनकी अभेद परिणति हुई है, उन्हें उपाध्याय कहते हैं। साधु को वह होता है, अन्तर इतना इसका। **भव्यकमल के सूर्य और (जिनकथित पदार्थों के), उपदेशक...** इतना यहाँ लेंगे। शुद्ध-शुद्ध है। रत्नत्रयमय वीतरागी परिणति जिन्हें शुद्ध हुई है। **भव्यकमल के सूर्य...** योग्य प्राणी, उसके सूर्य।

जिसकी अन्तर योग्यता चैतन्य के प्रकाश की प्रगट होने की योग्यता है, उसे उपाध्याय सूर्य समान हैं। वीतराग ने कहे हुए पदार्थों के उपदेशक, ऐसा। उन्हें उपदेशक कहा है न? सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर ने जो पदार्थ कहे, उन्हें उपदेश करने में समर्थ हैं।

ऐसे उपाध्यायों को मैं नित्य... मुनि कहते हैं। पुनः पुनः वन्दन करता हूँ। ऐसी दशावान परिणति वीतरागदशा जिन्हें हुई है और जैनपदार्थों के उपदेशक हैं, उन्हें मैं बारम्बार वन्दन करता हूँ। व्यवहार अधिकार है न? पाँचों परमेष्ठी स्वद्रव्य की अपेक्षा से तो व्यवहार, पर है। पाँच को मानना, वन्दन आदि सब व्यवहार शुभराग है; इसलिए व्यवहारचारित्र में उन्हें रखा है।

गाथा-७५

वावारविप्पमुक्का चउव्विहाराहणासयारत्ता ।
णिगंथा णिम्मोहा साहू दे एरिसा होंति ॥७५॥

व्यापार-विप्रमुक्ताः चतुर्विधाराधनासदारक्ताः ।
निर्ग्रन्था निर्मोहाः साधवः एतादृशा भवन्ति ॥७५॥

निरन्तराखण्डितपरमतपश्चरणनिरतसर्वसाधुस्वरूपाख्यानमेतत् । ये महान्तः परमसंयमिनः
त्रिकालनिरावरणनिरञ्जनपरमपञ्चमभावभावनापरिणताः अत एव समस्तबाह्यव्यापार-विप्रमुक्ताः ;
ज्ञानदर्शनचारित्रपरमतपश्चरणाभिधानचतुर्विधाराधनासदानुरक्ताः ; बाह्याभ्यन्तरसमस्तपरिग्रहाग्रह-
विनिर्मुक्तत्वान्निर्ग्रन्थाः ; सदा निरञ्जननिजकारणसमयसारस्वरूपसम्यक्श्रद्धानपरिज्ञानाचरण-
प्रतिपक्षमिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राभावान्निर्मोहाः च ; इत्थम्भूतपरमनिर्वाणसीमन्तिनीचारुसीमन्त-
सीमाशोभामसृणघुसृणरजः पुञ्जपिञ्जरितवर्णालङ्कारावलोकनकौतूहल-बुद्ध्योऽपि ते सर्वेपि
साधवः इति ।

निर्ग्रन्थ हैं निर्मोह हैं व्यापार से प्रविमुक्त हैं ।
हैं साधु, चउआराधना में जो सदा अनुरक्त हैं ॥७५॥

गाथार्थ :—[व्यापारविप्रमुक्ताः] व्यापार से विमुक्त (समस्त व्यापाररहित),
[चतुर्विधाराधनासदारक्ताः] चतुर्विध आराधना में सदा रक्त, [निर्ग्रन्थाः] निर्ग्रन्थ और
[निर्मोहाः] निर्मोह—[एतादृशाः] ऐसे [साधवः] साधु [भवन्ति] होते हैं ।

टीका :—यह, निरन्तर अखण्डित परम तपश्चरण में निरत (लीन) ऐसे सर्व
साधुओं के स्वरूप का कथन है ।

[साधु कैसे होते हैं ?] (१) परमसंयमी महापुरुष होने से त्रिकाल-निरावरण
निरञ्जन परम पञ्चम भाव की भावना में परिणमित होने के कारण ही समस्त बाह्य
व्यापार से विमुक्त; (२) ज्ञान, दर्शन, चारित्र और परम तप नाम की चतुर्विध आराधना

में सदा अनुरक्त; (३) बाह्य-अभ्यन्तर समस्त परिग्रह के ग्रहण-रहित होने के कारण निर्ग्रन्थ; तथा (४) सदा निरञ्जन निज कारणसमयसार के स्वरूप के सम्यक्, श्रद्धान, सम्यक् परिज्ञान और सम्यक् आचरण से प्रतिपक्ष ऐसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का अभाव होने के कारण निर्मोह - ऐसे परमनिर्वाणसुन्दरी की सुन्दर माँग की शोभारूप कोमल केशर के रज-पुञ्ज के सुवर्णरङ्गी अलङ्कार को (केशर-रज की कनकरङ्गी शोभा को) देखने में कौतूहलबुद्धिवाले वे समस्त साधु होते हैं (अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणवाले, मुक्तिसुन्दरी की अनुपमता का अवलोकन करने में आतुर बुद्धिवाले समस्त साधु होते हैं)।

गाथा-७५ पर प्रवचन

अब ७५वीं गाथा। साधु, जैन के साधु।

मुमुक्षु : दूसरी जाति में साधु होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन में भी बहुत लोग साधु कहते हैं न? ये लोग कहते हैं न? णमो लोए सव्व साहूणं। जगत के सब साधु उसमें आये। लोए सव्व साहूणं। जैन के वे ही साधु हैं, बाकी कोई साधु नहीं। अन्य में है ही नहीं।

मुमुक्षु : अर्थ बहुत संकुचित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संकुचित अर्थ है। वीतराग परमेश्वर ने जो आत्मा वीतरागस्वरूप कहा, ऐसे वीतरागस्वरूप में जिसकी अन्तर्मुख दृष्टि और अनुभव की स्थिरता है, उसे साधु कहते हैं। वह अन्य में नहीं होता। जैन परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य में वह नहीं होता। णमो लोए सव्व साहूणं। ऐसे सब साधु हों वे इसमें आते हैं। चाहे जो वेश धारण किया हो (और) जैन में भी अज्ञानी मिथ्यादृष्टि पुण्य से धर्म माननेवाले, व्यवहारक्रिया के माननेवाले, वे भी साधुपने में नहीं आते।

मुमुक्षु : पुण्य को धर्म न माने, पुण्य को उपादेय माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह का वही हुआ न? आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द वीतराग की मूर्ति, वही उपादेय है। उसके अतिरिक्त विकल्प जो राग, वह तो हेय है। ऐसा

न मानता हो, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे जैन साधु में गिनने में नहीं आता, इसलिए कहते हैं, देखो! पहला शब्द है। ७५वीं गाथा।

वावारविप्पमुक्का चउव्विहाराहणासयारत्ता ।

णिगंथा णिम्मोहा साहू दे एरिसा होंति ॥७५॥

ऐसे साधु वीतरागमार्ग में होते हैं।

निर्ग्रन्थ हैं निर्मोह हैं व्यापार से प्रविमुक्त हैं।

हैं साधु, चउआराधना में जो सदा अनुरक्त हैं ॥७५॥

टीका : यह, निरन्तर अखण्डित परम तपश्चरण में निरत... देखो! निरन्तर अखण्डित परम तपश्चरण में... अतीन्द्रिय आनन्द में उग्ररूप से पुरुषार्थ से जो एकाग्र हो गये हैं, वे निरन्तर अखण्डित। परम इच्छा बिना अमृतस्वरूप भगवान आत्मा में जो निरत-लीन हैं। देखो! पंच महाव्रत में लीन हैं, अट्टाईस मूलगुण में लीन हैं, यह नहीं लिया है, क्योंकि पंच महाव्रतादि तो विकल्प है, वह तो आस्रव है; उसमें लीन नहीं होते। ऐसी बहुत कठिन बात है। निरन्तर अखण्डित परम तपश्चरण में निरत... ठीक। तपश्चरण अर्थात् मुनिपना। मुनिपना अर्थात् चारित्र। परमचारित्र। यह तो वस्तु की स्थिति है। यह कोई सम्प्रदाय नहीं है। आत्मा ही वीतरागमूर्ति... आहाहा! उसकी जिसे निरन्तर अखण्डस्वरूप में परम स्थिरता, परम लीनता (हुई है)। ऐसे सर्व साधुओं के स्वरूप का कथन है। ऐसे सर्व साधुओं के...

[साधु कैसे होते हैं ?] (१) परमसंयमी महापुरुष होने से... परमसंयमी महापुरुष होने से त्रिकाल-निरावरण निरञ्जन परम पञ्चम भाव की भावना में परिणमित होने के कारण... आहाहा! व्यापार से प्रविमुक्त की व्याख्या करते हैं। आहाहा! जिन्हें विकल्प का व्यापार भी छूट गया है। आहाहा! परमसंयमी महापुरुष होने से... ऐसे होने के कारण, ऐसा। त्रिकाल-निरावरण निरञ्जन परम पञ्चम भाव... अपना त्रिकाली परम पंचम भाव.. आहाहा! ध्रुव ध्रुवभाव। भगवान आत्मा का त्रिकाली नित्यस्वरूप, ऐसे पञ्चम भाव की भावना... भावना शब्द से एकाग्रता। उसमें परिणमित होने के कारण... अकेली पंचम भाव की विकल्प की भावना, ऐसा नहीं। देखो! इसमें भावना में परिणमित लिए हैं। ध्रुव शुद्ध चैतन्यद्रव्य, त्रिकाली आनन्द का धाम, परम पंचम भाव, वस्तु की अस्ति का

त्रिकाल भाव, उसकी भावना में परिणमित हैं। पंचम भाव, वह त्रिकाली भाव है और उसकी भावना, वह वर्तमान पर्याय है। आहाहा! ऐसे साधु होते हैं। जैन परमेश्वर तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ के शासन में ऐसे साधु होते हैं। उन्हें साधु कहा जाता है।

इसके कारण ही समस्त बाह्य व्यापार से विमुक्त;... व्यापार प्रविमुक्त कैसे? विकल्प का व्यापार प्रविमुक्त छूट गया है। आहाहा! निर्विकल्प अखण्ड त्रिकाली पंचम स्वभाव की भावना में परिणमित, उस अवस्थारूप हो गये होने के कारण, आहाहा! इस कारण उन्हें बाह्य का व्यापार छूट गया है। बाह्य व्यापार से विमुक्त;... वास्तव में तो वे पंच महाव्रत के विकल्प से भी विमुक्त हैं। आहाहा! वीतराग का स्वरूप बहुत सूक्ष्म है। अलौकिक परमात्मा स्वयं ही ध्रुव नित्य को भावना में परिणमित कराकर, ऐसा नित्य भगवान उसकी भावना-एकाग्रता में वर्तमानदशा में परिणमित होकर बाह्य व्यापार से छूट गये हैं। आहाहा! ऐसी परिणति खड़ी हुई, इसलिए बाह्य विकल्प का व्यापार रुक गया है। देखो! यह साधु।

जिन्हें परमानन्द की पूर्ण प्राप्ति करनी है, उन्हें तो ऐसी आराधना में त्रिकाली आनन्द में लीन हो, उसे परमानन्द की प्राप्ति होती है। अर्थात् मुक्ति होती है, ऐसा। समस्त बाह्य व्यापार, ऐसा। 'विष्णुमुक्का' है न? उसमें यह कहा। समस्त शब्द ले लिया। समस्त बाह्य व्यापार। आहाहा! क्योंकि मुनि को तो उपदेश भी नहीं। उपदेश तो आचार्य, उपाध्याय को होता है। आहाहा! मुनि तो अपने स्वरूप को साधते हैं। बाह्य व्यापार से विमुक्त;... हैं। उन्हें अकेला वीतरागभाव का परिणमन है, ऐसा कहते हैं। आत्मा स्वयं त्रिकाली वीतरागस्वभाव है, उसकी भावना वीतराग परिणति। बस, यह उनका स्वरूप है। अब आराधना में लीन हैं, यह बताते हैं।

(२) ज्ञान, दर्शन, चारित्र और परम तप नाम की चतुर्विध आराधना में सदा अनुरक्त;... है। भगवान आत्मा के ओर की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति तथा इच्छानिरोध, अमृतस्वरूप भगवान में आराधना में लीन हैं। आहाहा! दुनिया धर्म प्राप्त करे या न करे, ऐसा विकल्प यहाँ है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन, आत्मचारित्र और आत्मा में विशेष उग्र पुरुषार्थ से लीन, ऐसी चतुर्विध आराधना में सदा अनुरक्त;... ऐसा। 'चउव्विहाराहणासयारत्ता' है न पाठ? तब अब खावे-पीवे

कब ? सदा अनुरक्त । वे खाते नहीं और पीते भी नहीं । आहाहा ! यह क्रिया होती है और विकल्प आता है, उसके जाननेवाले रहते हैं । आहाहा ! समझ में आया ? यह णमो लोए सव्व साहूणं की व्याख्या है ।

जिन्हें चार प्रकार की आराधना, सेवन है । दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप के सेवन में लीन हैं । आहाहा ! 'साधे इति साधु ।' पूर्ण स्वरूप का अन्तर में साधन करे, वे साधु हैं । ऐसा पूर्ण स्वरूप तो सर्वज्ञ वीतरागमार्ग में होता है और ऐसे पूर्ण शक्ति को धरनेवाला आत्मा भी ऐसे वीतरागमार्ग में ही होता है । ऐसे पूर्ण स्वरूप की आराधना में तत्पर हैं कि जिससे उसकी—पूर्ण स्वरूप की पर्याय में प्राप्ति होती है । निर्ग्रन्थ हैं । साधु निर्ग्रन्थ हैं ।

बाह्य-अभ्यन्तर समस्त परिग्रह के ग्रहण-रहित होने के कारण... बाह्य में वस्त्र का धागा भी नहीं होता । मुनि को वस्त्र का एक टुकड़ा भी नहीं होता । तिलतुष कहा है न ? तिल का छिलका जितना भी परिग्रह होवे तो भी वह मुनि नहीं है । आहाहा ! और वह स्वयं को मुनि माने तो कहते हैं कि निगोद में जाता है । आहाहा ! वस्तु की स्थिति ऐसी है । मुनिदशा में वस्त्र-पात्र ग्रहण करने का विकल्प उन्हें नहीं होता । मुनि किसे कहते हैं ? आहाहा ! धन्य दशा.. ! धन्य अवतार.. ! जिन्होंने केवलज्ञान को हथेली में लेने की तैयारी की है, ऐसे मुनि बाह्य में वस्त्र नहीं, अभ्यन्तर में राग का कण नहीं । आहाहा !

समस्त परिग्रह के ग्रहण-रहित होने के कारण... इस कारण से निर्ग्रन्थ हैं, ऐसा कहते हैं । निर्ग्रन्थ क्यों हैं ? बाह्य अभ्यन्तर का ग्रन्थ-राग छूट गया है । अभ्यन्तर राग, परिग्रह और बाह्य में वस्त्र का टुकड़ा सब छूट गया है ; इसलिए उन्हें निर्ग्रन्थ कहा जाता है । अब उन्हें निर्मोह कहते हैं । मुनि निर्मोह होते हैं ।

(४) सदा निरञ्जन निज कारणसमयसार... लो ! सदा निरञ्जन निज कारण प्रभु, निरञ्जन त्रिकाल शुद्ध आत्मा है । ऐसा निज कारणसमयसार । त्रिकाल परमात्मस्वरूप ध्रुव, उसके स्वरूप के सम्यक् श्रद्धान,.... ऐसा कारणसमयसार भगवान नित्य, उसके स्वरूप का श्रद्धान, सम्यक् श्रद्धान परिणमनरूप, ऐसा कहते हैं । सम्यक् परिज्ञान । आहाहा ! निरञ्जन निज कारणसमयसार के स्वरूप के... परिज्ञान । इससे उन्हें निर्मोह कहने में आता है, ऐसा कहते हैं । कहो, सदा निरञ्जन निज कारणसमयसार के स्वरूप के... ऐसा जो त्रिकाली भगवान आत्मा का वीतरागीस्वरूप आत्मा का ध्रुव, उसका सम्यक् श्रद्धान,

सम्यक् परिज्ञान और सम्यक् आचरण से प्रतिपक्ष ऐसे मिथ्यादर्शन,... इसमें ऐसा लिया। नहीं तो कितने ही कहते हैं न? वह व्यवहार प्रतिपक्ष। व्यवहार प्रतिपक्ष नहीं, यह प्रतिपक्ष। क्या करे? यह तो दो की बात है। वह कहे, निश्चय, व्यवहार के प्रतिपक्षरहित है। व्यवहार के परिहार के लिए 'सार' पद जोड़ा है। वहाँ तो व्यवहार के विकल्प का अभाव बतलाकर अकेला बतलाना है। यहाँ तो दूसरी बात है। निर्मोह है न? निर्मोहदशा प्रगट की है, उसे ऐसे भाव का जिसे अभाव है, परन्तु वह कहते हैं उसमें से। उसमें देखो उसमें। क्या कहा? शान्तिभाई! क्या कहा?

यहाँ सदा निरञ्जन निज कारणसमयसार के स्वरूप के... सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण से प्रतिपक्ष ऐसे मिथ्यादर्शन,... लिया है। उससे प्रतिपक्ष मिथ्याज्ञान। ऐसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का अभाव होने के कारण निर्मोह... हैं। लो, और पहले आया था, वह व्यवहार के परिहार के लिए सारपद जोड़ा है।

मुमुक्षु : वह प्रतिपक्ष कहाँ अभी पावे, वह तो ४९ में लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब आता है। यह तो सब आता ही है न? व्यवहार का फल और व्यवहार दो से प्रतिपक्ष निश्चय। लोगों को अन्दर ऐसा आग्रह हो जाता है न? और उस निश्चय का भान नहीं होता, फिर व्यवहार है, वह सर्वस्व मान लिया गया कि यह सब हमारा मुनिपना ही यह है और साधुपना यह है। मोक्ष का मार्ग यह है। भाई! मार्ग ऐसे नहीं मिलता। वह तो उपशमरस, शान्तरस। भगवान शान्तरस है, अकषायरस है। उस अकषायरस का परिणमन, वह मोक्ष का मार्ग है। मिथ्या व्यवहार कषाय है, वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है।

वहाँ तो नियमसार शब्द था न? नियमसार शब्द था। सार शब्द को... रखा है। सार क्यों कहा है? कि व्यवहार के परिहार के लिए (कहा है), विपरीत के परिहार के लिए (कहा है)। वहाँ व्यवहार होता है तो उसे... विपरीत के परिहार के लिए। ऐसा विपरीत के परिहार के लिए। विपरीत अर्थात् मिथ्यादर्शन-ज्ञान ऐसा कहते हैं। यहाँ तो नियम जैसे आत्मा, समय-सार द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित, वह समयसार। उसमें भावकर्म आया। पुण्य-पाप दोनों विकल्प आये। उनसे रहित जो समयसार। इसी प्रकार नियमसार स्वाभाविक आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो स्व आश्रय से निर्मल प्रगट हुआ, उससे विरुद्ध

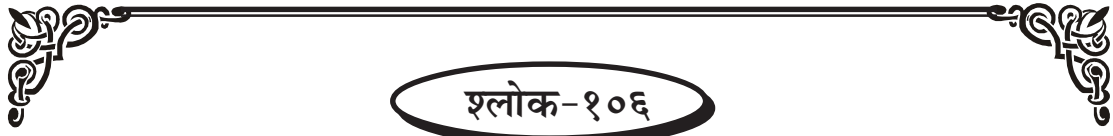
व्यवहार का विकल्प, उससे रहित इसलिए सार। जैसे समयसार में सार क्यों? भावकर्मरहित, इसलिए सार, ऐसा। द्रव्यकर्मरहित तो है ही। यहाँ सार क्यों? व्यवहार के विकल्परहित, इसलिए सार। यह यहाँ अर्थ नहीं है। यहाँ तो निर्मोह कहना है। आहाहा! शास्त्रों का अर्थ करने में अपने स्वार्थ से अपना पक्ष पोषण करने के लिए (ऐसे अर्थ करते हैं)। आहाहा! अरे रे! क्या करता है? जीव को नुकसान (होता है)। उसकी इसे खबर नहीं है।

सदा निरञ्जन निज कारणसमयसार के स्वरूप के सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् परिज्ञान और सम्यक् आचरण से प्रतिपक्ष ऐसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का अभाव होने के कारण निर्मोह... मुनि हैं। ऐसे परमनिर्वाणसुन्दरी की सुन्दर माँग की शोभारूप कोमल केशर के रज-पुञ्ज के सुवर्णरङ्गी अलङ्कार को... यहाँ विशेष केशर के रज-पुञ्ज के सुवर्णरङ्गी अलङ्कार को (केशर-रज की कनकरङ्गी शोभा को) देखने में... आनन्द की दशा को अवलोकन करने में, अनुपमता अवलोकन करने में आतुर बुद्धिवाले, ऐसा। पूर्ण आनन्द की दशा को प्राप्त करने में आतुर बुद्धिवाले। उन्हें पुण्य होगा और स्वर्ग में जाऊँगा, लोग मानेंगे या पूजेंगे, यह बात है नहीं। आहाहा! पूर्ण आनन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति को देखने में कौतूहलबुद्धिवाले वे समस्त साधु होते हैं... लो, ऐसे सब साधु होते हैं।

(अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणवाले, मुक्तिसुन्दरी की अनुपमता का अवलोकन करने में आतुर बुद्धिवाले समस्त साधु होते हैं)। जैन के ऐसे साधु होते हैं। अन्यत्र ऐसे साधु नहीं होते। णमो लोए सव्व साहूणं में सब समाहित हो जाएँ, ऐसा नहीं है। अन्यमत के भी साधु डालोगे, तब ऐसा कहे... कोई एक व्यक्ति ऐसा कहता था। संख्या पूरी होगी। करोड़ साधु कहे हैं। ढाई द्वीप में इतने सब कहाँ से लाओगे - ऐसा कहता है। वह तो अन्यमत के डालोगे तब होगा। डाला। अन्यमत तो मिथ्यादृष्टि है, उसे क्या डाले? यहाँ तो चौथे-पाँचवें गुणस्थानवाले भी इसमें नहीं आते। चौथे और पाँचवें गुणस्थानवाले इस पद में (साधु के पद में) नहीं आते। आहाहा!

ऐसे साधु स्वरूप का आराधन, आनन्द की सेवा, अतीन्द्रिय आनन्द की सेवा करते हैं। उसकी आराधना में तत्पर / लीन हैं, उन्हें यहाँ साधु कहने में आता है। जितने साधु के भाव हैं, उनमें एकदेश श्रावक को भी लागू पड़ता है। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में कहा है

न ? जितने साधु के भाव कहे, उनका एकदेश, एक भाग सब श्रावक को लागू पड़ता है। समझ में आया ? अब उसे निश्चयरत्नत्रय आया या नहीं ? ऐसा मेरा कहना है। भले एकदेश आया। सब जितना भाग है, उसमें कुछ श्रद्धा-ज्ञान का एकदेश नहीं। आचरण का एकदेश। आचरण का एकदेश, वह सर्व देश का भाग है। दर्शन के कोई भाग नहीं हैं। मुनि को तो सर्वदेशी समकित है और श्रावक को एकदेशी एक अंश है, ऐसा है ? आहाहा !



श्लोक-१०६

अब ७५ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(आर्या)

भविनां भवसुखविमुखं त्यक्तं सर्वाभिषङ्गसम्बन्धात्।
मङ्क्षु विमङ्क्ष्व निजात्मनि वन्द्यं नस्तन्मनः साधोः ॥१०६॥

(वीरछन्द)

संसारी के भव-सुख से जो विमुख, संग सम्बन्ध विहीन।
मुनिमन है वह वन्द्य हमें, हे मुनि! मन करो निजात्म विलीन ॥

[श्लोकार्थ :] भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख है और सर्व सङ्ग के सम्बन्ध से जो मुक्त है, ऐसा वह साधु का मन हमें वन्द्य है। हे साधु! उस मन को शीघ्र निजात्मा में मग्न करो।

श्लोक-१०६ पर प्रवचन

अब ७५ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

भविनां भवसुखविमुखं त्यक्तं सर्वाभिषङ्गसम्बन्धात्।
मङ्क्षु विमङ्क्ष्व निजात्मनि वन्द्यं नस्तन्मनः साधोः ॥१०६॥

आहाहा! भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख है... देखो! भववाले जीवों के भवसुख, ऐसा। भव में रहे हुए अज्ञानी, उन्हें जो भवसुख की कल्पना है, इन्द्रियों में सुख है, इज्जत में सुख है, ऐसे भव में रहे हुए जीवों के... आहाहा! भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख है... पाँच इन्द्रिय के विषय में, राग में, पुण्य में भी कहीं सुख है नहीं। भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख है और सर्व सङ्ग के सम्बन्ध से जो मुक्त है,... साधु है न? सर्व संग छूट गया है। असंग भगवान आत्मा के संग में पड़े हैं, पर का संग जिन्हें छूट गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र का-जिनवाणी का संग तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। अन्तर में नहीं। वाँचन का विकल्प है, उससे छूटे हुए हैं। व्यवहार से विमुक्त हैं। चौथे गुणस्थान में व्यवहार से मुक्त हैं तो मुनि की क्या बात करना! आहाहा! सम्यग्दर्शन में ही विकल्प से मुक्तदशा है। अस्थिरता की अपेक्षा से विकल्प हो, परन्तु दृष्टि में उससे मुक्त है। दृष्टि का विषय नहीं और दृष्टि के परिणामन में एक भी राग आता नहीं। मुनि को यह शास्त्र पठन का विकल्प (आता है) परन्तु उससे छूटे हुए पड़े हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी शास्त्र पठन का जो विकल्प (आवे), उससे वे पृथक् हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, वस्तु ही ऐसी है। वीतराग रस से परिणमित भगवान, उसके—राग के रस से तो पृथक् पड़ गया है। आहाहा! यह बात पकड़ना जगत को कठिन है। इसलिए अन्तर की पकड़ बिना बाहर में पकड़कर चल निकले हैं। मार्ग ऐसा है, भाई! यह तो तेरे स्वभाव के लाभ की बात है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

सर्व सङ्ग के सम्बन्ध से जो मुक्त है,... कहो, जिनवाणी और देव-गुरु भी परसंग। वह संग भी जिन्हें अन्तर में छूट गया है। चौथे में कहा न? परसंग-राग से तो मुक्त है। देव-गुरु की श्रद्धा का विकल्प से मुक्त है। आहाहा! बापू! मोक्ष का मार्ग तो कोई अलौकिक है। वह अन्तर अवलोकन बिना बाहर से प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। ऐसे **सर्व सङ्ग के सम्बन्ध से जो मुक्त है,...** 'सर्वाभिषङ्गसम्बन्धात् त्यक्तं' ऐसा है न? कोई भी संग ही नहीं। आहाहा! चौथे गुणस्थान में विकल्प का संग नहीं, मुक्त है, परन्तु अस्थिरता की अपेक्षा से वहाँ राग है। उस अस्थिरता के राग से भी छूट गये हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अकेली वीतराग धारा, वह साधुपना। आहाहा! बीच में पंच महाव्रतादि के विकल्प (आवें, वह) कर्मधारा है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! कहो।

ऐसा वह साधु का मन हमें वंद्य है। मुनि स्वयं कहते हैं। ऐसा उस साधु का चैतन्य परिणमन। मन अर्थात् वह। भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख... अर्थात् आत्मा के सुख के सन्मुख, ऐसा। सर्व सद्ग के सम्बन्ध से जो मुक्त है,... असंग ऐसा भगवान, उसके संग में लीन। ऐसा जो उनका परिणमन, (वह) हमको वन्द्य है। कहो, मुनि, मुनि के लिए कहते हैं। आहाहा!

हे साधु! उस मन को शीघ्र निजात्मा में मग्न करो। आहाहा! उस शुद्ध परिणति को अन्दर में झुकाओ। उस परिणति को शीघ्र निजात्मा में मग्न करो। उग्ररूप से अन्दर स्थिर होओ, ऐसा कहते हैं। जहाँ भगवान पूर्णानन्दस्वरूप विराजता है, वह स्वयं प्रभु (है), उसमें लीन होओ। यह साधु का कर्तव्य और कार्य है। आहाहा! इस बात की तो गन्ध, सुनने को भी मिले नहीं और यह करो.. यह करो.. यह करो.. हो गया। १०६वाँ कलश।

गाथा-७६

एरिसयभावणाए ववहारणयस्स होदि चारित्तं ।
णिच्छय-णयस्स चरणं एत्तो उड्डं पवक्खामि ॥७६॥

ईदृग्भावनायां व्यवहार-नयस्य भवति चारित्रम् ।
निश्चय-नयस्य चरणं एतदूर्ध्वं प्रवक्ष्यामि ॥७६॥

व्यवहारचारित्राधिकारव्याख्यानोपसंहारनिश्चयचारित्रसूचनोपन्यासोऽयम् । इत्थं भूतायां प्रागुक्तपञ्चमहाव्रतपञ्चसमितिनिश्चयव्यवहारत्रिगुप्तिपञ्चपरमेष्ठिध्यानसंयुक्तायां अतिप्रशस्त-शुभभावनायां व्यवहारनयाभिप्रायेण परमचारित्रं भवति, वक्ष्यमाणपञ्चमाधिकारे परमपञ्चमभाव-निरतपञ्चमगतिहेतुभूतशुद्धनिश्चयनयात्मपरमचारित्रं द्रष्टव्यं भवतीति ।

तथा चोक्तं मार्गप्रकाशे ह

(वंशस्थ)

कुसूलगर्भस्थितबीजसोदरं भवेद्विना येन सुदृष्टिबोधनम् ।
तदेव देवासुरमानवस्तुतं नमामि जैनं चरणं पुनः पुनः ॥

तथाहि ह

इस भावना में जानिये चारित्र नय व्यवहार से ।
निश्चय-चरण अब मैं कहूँ निश्चयनयात्मक द्वार से ॥ ७६ ॥

गाथार्थः—[ईदृग्भावनायाम्] ऐसी (पूर्वोक्त), भावना में [व्यवहारनयस्य] व्यवहारनय के अभिप्राय से [चारित्रम्] चारित्र [भवति] है; [निश्चयनयस्य] निश्चयनय के अभिप्राय से [चरणम्] चारित्र [एतदूर्ध्वम्] इसके पश्चात् [प्रवक्ष्यामि] कहूँगा ।

टीका :—यह, व्यवहारचारित्र-अधिकार का जो व्याख्यान, उसके उपसंहार का और निश्चयचारित्र की सूचना का कथन है ।

ऐसी जो पूर्वोक्त पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, निश्चय-व्यवहार त्रिगुप्ति तथा पञ्च परमेष्ठी के ध्यान से संयुक्त, अतिप्रशस्त शुभभावना, उसमें व्यवहारनय के अभिप्राय से परम चारित्र है; अब कहे जानेवाले पाँचवें अधिकार में, परम पञ्चम भाव में लीन, पञ्चम गति के हेतुभूत, शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र द्रष्टव्य (देखनेयोग्य) है।

इसी प्रकार मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वंशस्थ)

कुसूलगर्भस्थितबीजसोदरं भवेद्विना येन सुदृष्टिबोधनम् ।
तदेव देवासुरमानवस्तुतं नमामि जैनं चरणं पुनः पुनः ॥

[श्लोकार्थः] जिसके बिना (जिस चारित्र के बिना) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कोठार के भीतर पड़े हुए बीज (अनाज) समान हैं, उसी देव-असुर-मानव से स्तवन किये गये जैन चरण को (ऐसा जो सुर-असुर मनुष्यों से स्तवन किया गया जिनोक्त चारित्र उसे) मैं पुनः-पुनः नमन करता हूँ।

गाथा-७६ पर प्रवचन

अब यह व्यवहारचारित्र की अन्तिम गाथा है।

एरिसयभावणाए ववहारणयस्स होदि चारित्तं ।
णिच्छय-णयस्स चरणं एत्तो उट्ठं पवक्खामि ॥७६॥

इस भावना में जानिये चारित्र नय व्यवहार से।
निश्चय-चरण अब मैं कहूँ निश्चयनयात्मक द्वार से ॥ ७६ ॥

टीका : यह, व्यवहारचारित्र-अधिकार का जो व्याख्यान, उसके उपसंहार का... यह पूरा किया जाता है, ऐसा कहते हैं। और निश्चयचारित्र की सूचना का कथन है। अब से निश्चयचारित्र की व्याख्या आयेगी।

ऐसी जो पूर्वोक्त पञ्च महाव्रत,... यह सब शुभभाव। पञ्च समिति, निश्चय-व्यवहार त्रिगुप्ति... में भी जो व्यवहार भाग वह। ऐसा लेना। तथा पञ्च परमेष्ठी के ध्यान

से संयुक्त, अतिप्रशस्त शुभभावना,... नहीं तो उस निश्चयगुप्ति में तो शुद्धता आती है, परन्तु निश्चय और व्यवहार में जो यह शुभभाव लेना। व्यवहार है न? पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, निश्चय-व्यवहार त्रिगुप्ति... में शुभभावना और पञ्च परमेष्ठी के ध्यान से संयुक्त,... पंच परमेष्ठी का ध्यान भी शुभभाव है। उसमें शुद्धता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रशस्त और अप्रशस्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव है, शुभ।

शुभभावना, उसमें व्यवहारनय के अभिप्राय से परम चारित्र है;... व्यवहारनय से उसे चारित्र कहा जाता है। निश्चय से परमचारित्र यह तो उसे व्यवहार से परमचारित्र का आरोप दिया गया है। परम शब्द प्रयोग किया है न? शुभभाव। परन्तु समकित, दर्शन, ज्ञान, चारित्रसहित है, उसे। अज्ञानी की यहाँ बात नहीं है। अतिप्रशस्त शुभभावना, उसमें व्यवहारनय के अभिप्राय से परम चारित्र है;... निश्चयस्वरूप का अन्तर अनुभव, आनन्द की श्रद्धा, आनन्द का ज्ञान और आनन्द की रमणता में न्यूनता है। पूर्ण वीतरागता नहीं है; इसलिए बीच में ऐसा शुभभाव उसे होता है। यहाँ अज्ञानी की बात नहीं है। जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसे ऐसा शुभभाव होता है। उस शुभभाव को व्यवहारचारित्र कहा जाता है।

अब कहे जानेवाले पाँचवें अधिकार में,... लो, चार अधिकार हुए। परम पञ्चम भाव में लीन,... लो, यह निश्चयचारित्र। परम पञ्चम भाव में लीन,... त्रिकाली परमात्मस्वरूप अपना, उसमें जिसकी लीनता जमी है। पञ्चम गति के हेतुभूत,... देखो! व्यवहार में पंचम गति के हेतुभूत, ऐसा शब्द नहीं था। उसे ऐसे पाँचवें, ऐसा कहा कि व्यवहारनय के अभिप्राय से परम चारित्र है, बस इतना। यह तो पंचम गति के हेतुभूत मोक्ष का कारण। अन्दर ध्रुवस्वभाव में लीनता, वह निर्विकारी निर्विकल्पदशा / वीतरागी परिणति। पंचम भाव, वह ध्रुव है। लीन, वह वर्तमान वीतराग परिणति है। वह पंचम गति का कारण है। मोक्ष का कारण है। शुद्धनिश्चयनयस्वरूप परम चारित्र द्रष्टव्य (देखनेयोग्य) है। लो।

शुद्धनिश्चयनय... स्वरूप। शुद्धनिश्चयनय स्वरूप, वापस ऐसा। परम चारित्र, शुद्धनिश्चयनय का विषय या शुद्धनिश्चय, ऐसा नहीं। वह शुद्धनिश्चयनय स्वरूप ही परम चारित्र। परिणति को शुद्धनिश्चयस्वरूप कहा। शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र द्रष्टव्य

(देखनेयोग्य) है। अनुभव करनेयोग्य है, स्थिरता करनेयोग्य है। यह अधिकार पाँचवें में कहेंगे, ऐसा कहते हैं।

इसी प्रकार मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

कुसूलगर्भस्थितबीजसोदरं भवेद्विना येन सुदृष्टिबोधनम्।

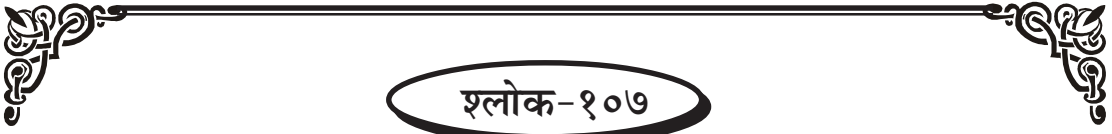
तदेव देवासुरमानवस्तुतं नमामि जैनं चरणं पुनः पुनः ॥

इसमें चारित्र की प्रधानता बतलाते हैं। आहाहा! स्वरूप की रमणता, चारित्र। जिसके बिना (जिस चारित्र के बिना) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कोठार के भीतर पड़े हुए बीज (अनाज) समान हैं,.. बीज उगता नहीं, फटता नहीं। चारित्र भी ऐसा है। वहाँ बीज जैसा है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान कोठार के भीतर पड़े हुए बीज (अनाज) समान हैं,.. उसमें चारित्र का परिणमन हो, तब मुक्ति होती है – ऐसा कहते हैं। अकेले सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान से मुक्ति नहीं होती, ऐसा सिद्ध करते हैं।

कोठार के भीतर पड़े हुए बीज (अनाज) समान हैं,.. परन्तु अनाज जैसे हैं न? फल नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान में चारित्र की परिणति चाहिए। वह नहीं हो, तब तक सम्यग्दर्शन-ज्ञान अनाज जैसे, बीज जैसे हैं। वैसा चारित्र, कि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बिना का, वह चारित्र, ऐसा। देव-असुर-मानव से स्तवन किये गये... स्वर्ग के देव, असुरदेव और मानवों (द्वारा) स्तवन किये गये... स्तवन किये गये। पशु और नारकी तो कुछ हैं नहीं। देव वैमानिक, असुर नीचे और मानव। उनसे स्तवन किये गये जैन चरण... अहो! जैन का चारित्र।

(ऐसा जो सुर-असुर मनुष्यों से स्तवन किया गया जिनोक्त चारित्र) परमेश्वर ने कहा हुआ, अन्तर आनन्द की रमणतारूप चारित्र, (उसे) मैं पुनः-पुनः नमन करता हूँ। आहाहा! स्वयं भी मुनि हैं और ऐसे चारित्र को बारम्बार उसमें मेरा स्तवन है, नमन है। आहाहा! परिणमन है और विशेष नमता हूँ। आहाहा! अरे! यह करने की वस्तु, उसे ऐसा करना रह जाए और न करने का करे, और हो गया। गँवावे। आहाहा! अभी तो ऐसी वस्तु है, ऐसी श्रद्धा करने में इसे पसीना उतरता है। नहीं.. नहीं.. अभी तो व्यवहार ही होता है, शुद्ध नहीं होता। लो, ठीक। शुद्ध नहीं होवे तो उसे व्यवहार भी कहने में नहीं आता। शुद्ध आचरण, शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र न हो तो उसे व्यवहार भी कहने में नहीं आता। निश्चय

होवे तो व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! क्या हो? स्वयं अपने को ठगता है और मानता है कि हम कुछ लाभ में हैं। आहाहा! क्या हो? ऐसे अनादि से जगत लुटता है। ऐसा जैन का चारित्र... ओहो! ऐसे जैन चरण को... भगवान कथित चारित्र को मैं पुनः-पुनः नमन करता हूँ। लो!



श्लोक-१०७

और (इस व्यवहारचारित्र अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) —

(आर्या)

शीलमपवर्गयोषिदनङ्गसुखस्यापि मूलमाचार्याः ।

प्राहुर्व्यवहारात्मकवृत्तमपि तस्य परम्परा हेतुः ॥१०७॥

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-
विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ व्यवहारचारित्राधिकारः चतुर्थः श्रुतस्कन्धः ।

(वीरछन्द)

मुक्ति सुन्दरी का अनंग सुख-मूल शील कहते आचार्य ।

उसका परम्परा कारण है कहा गया चारित व्यवहार ॥

[श्लोकार्थः] आचार्यों ने शील को (निश्चयचारित्र को) मुक्ति सुन्दरी के अनङ्ग (अशरीरी) सुख का मूल कहा है; व्यवहारात्मक चारित्र भी उसका परम्परा कारण है।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं, और पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) व्यवहारचारित्र अधिकार नाम का चौथा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

और (इस व्यवहारचारित्र अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) — वह (इससे पूर्व) मार्गप्रकाश का था । मार्गप्रकाश, वे स्वयं भी चारित्र को नमन करते हैं, ऐसा कहते हैं ।

शीलमपवर्गयोषिदनङ्गसुखस्यापि मूलमाचार्याः ।

प्राहुर्व्यवहारात्मकवृत्तमपि तस्य परम्परा हेतुः ॥१०७॥

श्लोकार्थः : आचार्यों ने शील को (निश्चयचारित्र को)... आत्मा के आनन्द की रमणतारूप चारित्र को, मुक्ति सुन्दरी के अनङ्ग (अशरीरी) सुख का मूल कहा है;... परमानन्द की प्राप्ति—ऐसी मुक्ति, यह अनङ्ग अर्थात् अङ्ग रहित, आत्मा का (अशरीरी) सुख का मूल कहा है;... लो, इस चारित्र का फल यह है, ऐसा कहते हैं । स्वरूप का सम्यग्दर्शन, स्वरूप का ज्ञान, अनुभव, आनन्द तदुपरान्त अन्तर में लीनता, ऐसा जो चारित्र, (वह) मोक्षरूपी (अशरीरी) सुख का मूल कहा है; व्यवहारात्मक चारित्र भी उसका परम्परा कारण है । लो, परन्तु किसे ? निश्चय है उसे । परम्परा अर्थात् व्यवहार । उसे छोड़कर होगा, तब होगा । ऐसा गजब है, भाई ! पक्ष का व्यामोह, अपने पक्ष की पुष्टि दे, वैसे अर्थ करे । और कहे वापस हम बराबर भगवान प्रमाण करते हैं ।

व्यवहारात्मक चारित्र भी उसका परम्परा कारण है । लो । किसका ? मुक्ति सुन्दरी अनङ्ग अशरीरी सुख का । परन्तु वह परम्परा, साक्षात् कारण तो यह । यह छूटकर फिर स्थिरता होगी, तब उसे पूर्णानन्द की प्राप्तिरूप मुक्ति प्राप्त होगी । इसप्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं, और पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था... यह टीकाकार । ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) व्यवहारचारित्र अधिकार नाम का चौथा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ । सबको एक-एक को श्रुतस्कन्ध कहा है । श्रुतस्कन्ध । चतुर्थ श्रुतस्कन्ध । सम्पूर्ण श्रुत का यह चौथा श्रुतस्कन्ध ।

परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार

श्लोक-१०८

(वंशस्थ)

नमोऽस्तु ते संयमबोधमूर्तये स्मरेभकुम्भस्थलभेदनाय वै ।

विनेयपङ्केजविकाश-भानवे विराजते माधवसेनसूरये ॥१०८॥

अथ सकलव्यावहारिकचारित्रतत्फलप्राप्तिप्रतिपक्षशुद्धनिश्चयनयात्मकपरमचारित्रप्रति-
पादनपरायणपरमार्थप्रतिक्रमणाधिकारः कथ्यते । तत्रादौ तावत् पञ्चरत्नस्वरूपमुच्यते । तद्यथाह
अथ पञ्चरत्नावतारः ।

[अधिकार के प्रारम्भ में टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्री माधवसेन
आचार्यदेव को श्लोक द्वारा नमस्कार करते हैंः]

(हरिगीतिका)

ज्ञान अरु संयम गुणों के मूर्तिमन्त स्वरूप जो ।

हैं कामगज कुम्भस्थलों को भेदने वाले अहो ॥

शिष्यरूपी कमल विकसित करें सूर्य समान जो ।

राजते हे सूरि माधवसेन! तुमको नमन हो ॥१०८॥

[श्लोकार्थः] संयम और ज्ञान की मूर्ति, कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल को
भेदनेवाले तथा शिष्यरूपी कमल को विकसित करने में सूर्यसमान—ऐसे हे विराजमान
(शोभायमान) माधवसेनसूरि! आपको नमस्कार हो ॥१०८॥

अब, सकल व्यावहारिक चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष ऐसा
जो शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र उसका प्रतिपादन करनेवाला परमार्थ-प्रतिक्रमण
अधिकार कहा जाता है। वहाँ प्रारम्भ में पञ्चरत्न का स्वरूप कहते हैं। वह इस
प्रकारः—

श्लोक-१०८ पर प्रवचन

अब परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार लो। अब यह निश्चय आया। पहला व्यवहार समझाकर, फिर निश्चय की बात ली है; इसलिए व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, ऐसा उसमें कुछ नहीं है। यह तो समझाने की पद्धति ऐसी है। इसीलिए व्यवहार पहले आवे और निश्चय बाद में आवे, ऐसा नहीं है। निश्चय के साथ ऐसा व्यवहार पहले समझाया है।

[अधिकार के प्रारम्भ में टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्री माधवसेन आचार्यदेव को श्लोक द्वारा नमस्कार करते हैं:] अपना। चन्द्रकीर्ति मुनि थे। इनके कोई बहुत ऊँचे मुनि होंगे, उन्हें वन्दन किया था न? वहाँ मुनि शब्द था। चन्द्रकीर्ति मुनि का निरूपण। यह उनके कोई आचार्य होंगे। उस समय तो सब सोने की खापडूँ जैसे सब पके हुए। मुनि, आचार्य.. आहाहा! ९०० वर्ष पहले की बात है न? सब वीतरागबिम्ब। इन चन्द्रकीर्ति मुनि का... ऐसा कहा न? यहाँ आचार्य को वन्दन करते हैं। नमोऽस्तु ते संयमबोधमूर्तये.. यह पर की खबर पड़ती है या नहीं? या केवलज्ञानी को खबर पड़ती है? भावलिंगी है या द्रव्यलिंगी, वह केवलज्ञानी को खबर पड़े। लो, यह भावलिंगी हैं, ऐसी यहाँ मुनि को खबर पड़ी है। अपने आचार्य की। पंचम काल के। दोनों पंचम काल के हैं न? आहाहा! छद्मस्थ को इतनी सब खबर पड़ गयी? कि मेरे गुरु ऐसे हैं, मुनि ऐसे हैं। ऐसी खबर पड़ गयी?

मुमुक्षु : छद्मस्थ को ज्ञान न होवे, ऐसा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञानी जाने। छद्मस्थ न जाने। (ऐसा लोग कहते हैं)।

मुमुक्षु : तो क्या जाने?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जाने।

नमोऽस्तु ते संयमबोधमूर्तये

स्मरेभकुम्भस्थलभेदनाय वै।

आहाहा! देखो! यह सब मुनि को पहिचान हुई है या नहीं? पद्मप्रभमलधारिदेव को।

विनेयपङ्केजविकाश-भानवे
विराजते माधवसेनसूरये ।

आहाहा! वीतरागी सन्त भी उस समय विराजते थे। आहाहा! संयम और ज्ञान की मूर्ति,... थी, कहते हैं। लो, किस प्रकार यह जानने में आया? परन्तु वह तो अरूपी मति-श्रुतज्ञान में ज्ञात हो गया? केवली जाने और मतिश्रुतज्ञानी जाने या नहीं? आहाहा! संयम और ज्ञान की मूर्ति,... थी। हमारे आचार्य, वे स्वरूप की रमणता और आत्मा का ज्ञान, इसकी तो मूर्ति थे। उनका स्वरूप ही यह था, कहते हैं।

कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल को भेदनेवाले... कहते हैं कि वे कैसे थे? विषय-वासनारूपी हाथी के कुम्भस्थल को भेदनेवाले। ओहोहो! ऐसे निर्विकारी ब्रह्मानन्द परिणमन जिन्हें था, ऐसा कहते हैं। यह तो अभी ९०० वर्ष पहले की बात है। वे तो केवली भी नहीं थे। उस समय तो चार ज्ञान भी कहाँ थे? अवधिज्ञानी कहाँ थे? मति और श्रुतज्ञान में भी ऐसी निर्मलता से छद्मस्थ का छद्मस्थ जान लेता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल... क्या कहलाता है? ऊपर कुम्भ होता है न हाथी का? उसे कुम्भस्थल कहते हैं। यह सिर नहीं? ऊपर होता है ऊपर?

मुमुक्षु : कांध।

पूज्य गुरुदेवश्री : कांध, क्या कहलाता है कांध। भाषा दूसरी है, बड़ा कांध होता है न, वहाँ मारे। वहाँ आगे सब अन्तड़ियों का पिण्ड वहाँ होता है न? बड़ा कांध होता है? वहाँ वह सिंह थाप मारे वहाँ। सब अन्तड़ियाँ खिंच जाती है। कांध, कांध।

कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल को... उसके कांध को भेदनेवाले। शिष्यरूपी कमल को विकसित करने में सूर्यसमान— लो! शिष्यरूपी कमल को विकसित करने में निमित्त। निमित्त सम्बन्धी व्याख्या है न? ऐसे हे विराजमान (शोभायमान) माधवसेनसूरि! माधवसेन, इनके गुरु, आचार्य आपको नमस्कार हो। यहाँ से शुरु करके, अब निश्चय अधिकार शुरु करना है न? ऐसे जो निश्चय संयम और ज्ञान की मूर्ति, कामदेव को तो तोड़कर अतीन्द्रिय आनन्द का प्रगट किया है, ऐसा कहते हैं। हे विराजमान (शोभायमान) माधवसेनसूरि! आपको नमस्कार हो।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)